

श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 5 अध्याय 23: शिशुमार रूप

22 September 2026



पाठ से पहले एक निवेदन

श्रीमद्भागवत महापुराण के ये अध्यायवार सार गीता प्रेस भागवत को मुख्य आधार मानकर तैयार किए गए हैं। ये भागवत के अध्ययन में सहायक हैं, मूल ग्रंथ का स्थान नहीं ले सकते।

अध्ययन का मुख्य और अनुशंसित मार्ग गीता प्रेस की भागवत पुस्तक से सीधा पाठ है। यात्रा में, घर से दूर, या जब पुस्तक पास न हो, तब निरंतर अध्ययन, पुनरावृत्ति और समझ के लिए इन सारों का सहारा लिया जा सकता है।



आकाश की ऊँचाइयों में समस्त तारागण ध्यान में एक ही जीवित आकृति के रूप में देखे जाते हैं — शिशुमार, भगवान् वासुदेव का कुण्डलित, डॉल्फिन-सदृश रूप — जिसकी पूँछ के सिरे पर महान् भक्त ध्रुव देदीप्यमान हैं और जिसके प्रत्येक अंग पर देवता और ग्रह विराजमान हैं।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विज्ञप्ति में पुनः आपका स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण की पावन कथाओं और शिक्षाओं की एक भक्तिपूर्ण यात्रा। अब अपनी दृष्टि को आकाश की सर्वोच्च ऊँचाइयों की ओर उठाते हुए, श्रीशुक हमें एक ऐसा आश्चर्य दिखाते हैं जो समूची तारों-भरी रात्रि को आराधना में बदल देता है। सप्तर्षियों से कहीं ऊपर ध्रुवतारा देदीप्यमान है — अटल ध्रुव — भगवान् द्वारा एक खम्भे के समान स्थिर किया गया,

जिसके चारों ओर समस्त आकाश का चक्र घूमता है। और प्राचीन भक्तों ने, गहन ध्यान में ऊपर की ओर निहारते हुए, उन असंख्य ज्योतियों को एक ही जीवित आकृति में समाया हुआ देखा — शिशुमार, स्वयं भगवान् वासुदेव का डॉल्फिन-सदृश रूप, आकाश में कुण्डलित, जिसके अंगों पर देवता और ग्रह विराजमान हैं। यह देदीप्यमान अध्याय हमें सिखाता है कि सन्ध्या के तारों को ऊपर देखकर वहाँ शीत और दूर की अग्नियाँ नहीं, अपितु स्वयं भगवान् का शरीर देखें, और प्रत्येक सन्ध्या को उस रूप का एक सरल, पावन प्रार्थना से अभिनन्दन करें।

अध्याय-परिचय

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 5 (पंचम स्कन्ध)
- अध्याय: 23 (तेईसवाँ अध्याय)
- अध्याय-शीर्षक: शिशुमार, आकाश में भगवान् का रूप
- प्रमुख वक्ता: श्रीशुकदेव गोस्वामी (श्रीशुक), राजा परीक्षित को कथा सुनाते हुए
- प्रमुख श्रोता: राजा परीक्षित — और यह संवाद सूत गोस्वामी द्वारा नैमिषारण्य में एकत्रित ऋषियों को पुनः सुनाया जाता है
- मुख्य स्थल: तारों-भरे आकाश की सर्वोच्च ऊँचाइयाँ, सप्तर्षियों से कहीं ऊपर ध्रुवतारे पर, और ज्योतियों का समूचा घूमता हुआ मण्डल
- केन्द्रीय विषय: किस प्रकार महान् भक्त ध्रुव आकाश के अटल ध्रुव-स्तम्भ के रूप में देदीप्यमान हैं, जिनके चारों ओर समस्त ग्रह और तारे खलिहान के खम्भे के गिर्द बैलों के समान घूमते हैं; किस प्रकार समूचे तारागण को ध्यान में शिशुमार — भगवान् वासुदेव के डॉल्फिन-सदृश रूप — के रूप में देखा जाता है, जिसके अंगों पर देवता और ग्रह स्थापित हैं; और उस पावन रूप को अर्पित सन्ध्या-प्रार्थना
- प्रमुख श्लोक-सीमा: स्कन्ध 5, अध्याय 23, श्लोक 1-9
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण

पिछले अध्याय से

बाईसवें अध्याय में, श्रीशुक ने राशिचक्र के पट्ट में सूर्य की क्रमबद्ध गति का वर्णन किया, जो ऋतुओं को विभाजित करती और हमारे दिनों को नापती है; चन्द्रमा का, जो भगवान् के अपने अमृत का पात्र है, जिससे देवता, पितर और समस्त वनस्पतियाँ अपने-अपने ऋतु में पोषित होती हैं; और ग्रहों तथा तारों की महान् कक्षाओं का, प्रत्येक अपने नियत मण्डल में गतिशील। यह अध्याय अब हमारी दृष्टि को और भी ऊँचा उठाता है — उस अटल ध्रुव की ओर जिसके चारों ओर वह समूचा गतिशील आकाश घूमता है, और उस दिव्य रूप की ओर जिसमें विवेकी जन उसे देखते हैं।

ध्रुव, आकाश का अटल ध्रुव-स्तम्भ

देदीप्यमान सप्तर्षियों से कहीं ऊपर, श्रीशुक हमें बताते हैं, उनसे बहुत ऊँचाई पर, वह स्थित है जिसे तत्त्वज्ञ भगवान् विष्णु का परम धाम कहते हैं। वहाँ महान् भक्त ध्रुव, उत्तानपाद के पुत्र, निवास करते हैं — वही अटल बालक जिसकी कथा भागवत पहले ही चतुर्थ स्कन्ध में गा चुका है, जिसने अपनी अविचल भक्ति से एक शाश्वत, अटल आसन जीत लिया। अब भी उनका अनवरत सम्मान होता है: अग्निदेव, देवराज इन्द्र,

प्रजापति कश्यप, और धर्मदेव सभी उन्हें श्रद्धापूर्वक प्रदक्षिणा करते हैं, उन्हें सदा अपने दक्षिण में रखते हुए, उनके स्थिर प्रकाश के चारों ओर तारों के रूप में एक साथ गतिशील। और वे उन समस्त प्राणियों के आधार हैं जो प्रलय की घड़ी तक भी बने रहते हैं।

श्रीशुक उवाच

अथ तस्मात्परतस्त्रयोदशलक्षयोजनान्तरतो यत्तद्विष्णोः परमं पदमभिवदन्ति यत्र ह महाभागवतो ध्रुव औत्तानपादिरग्निनेन्द्रेण प्रजापतिना कश्यपेन धर्मेण च समकालयुग्भिः सबहुमानं दक्षिणतः क्रियमाण इदानीमपि कल्पजीविनामाजीव्य उपास्ते तस्येहानुभाव उपवर्णितः ॥ १ ॥

śrī-śuka uvāca atha tasmāt paratas trayodaśa-lakṣa-yojanāntarato yat tad viṣṇoḥ paramaṁ padam abhivadanti yatra ha mahā-bhāgavato dhruva auttānapādir agninendreṇa prajāpatinā kaśyapena dharmeṇa ca samakāla-yugbhiḥ sabahu-mānaṁ dakṣiṇataḥ kriyamāṇa idānīm api kalpa-jīvinām ājīvyā upāste tasyehānubhāva upavarṇitaḥ

अर्थ: श्रीशुक ने आगे कहा: सप्तर्षियों से कहीं परे वह स्थित है जिसे विवेकी जन भगवान् विष्णु का परम धाम कहते हैं, जहाँ महान् भक्त ध्रुव, उत्तानपाद के पुत्र, निवास करते हैं। अब भी अग्नि, इन्द्र, प्रजापति कश्यप और धर्म उन्हें सदा दक्षिण में रखते हुए श्रद्धापूर्वक प्रदक्षिणा करते हैं, सब तारों के रूप में एक साथ गतिशील; और वे उन समस्त प्राणियों के आश्रय हैं जो लोकों के प्रलय तक भी जीवित रहते हैं। उनकी महिमा पहले ही एक पूर्व स्कन्ध में कही जा चुकी है। (स्कन्ध 5, अध्याय 23, श्लोक 1)

भगवान् की इच्छा से एक दृढ़ खम्भे के समान वहाँ स्थिर किए गए, ध्रुव सदा देदीप्यमान रहते हैं, समस्त ज्योतियों के महान् समूहों को — ग्रहों और नक्षत्रों दोनों को — एक सूत्र में बाँधे हुए, जिन्हें सर्वशक्तिमान्, सदा-जागरूक काल हमारी समझ से परे गति से घुमाता रहता है। श्रीशुक इसे स्पष्ट कहते हैं: ध्रुव का लोक उस अपरिवर्तनीय स्तम्भ के समान खड़ा है, जिसके चारों ओर काल की अनिद्र, अदृश्य गति समस्त ग्रहों और तारों को घुमाती है, और यह विधान स्वयं भगवान् की इच्छा से हुआ है।

स हि सर्वेषां ज्योतिर्गणानां ग्रहनक्षत्रादीनामनिमिषेणाव्यक्तरंहसा भगवता कालेन भ्राम्यमाणानां स्थाणुरिवावष्टम्भ ईश्वरेण विहितः शश्वदवभासते ॥ २ ॥

sa hi sarveṣāṁ jyotir-gaṇānām graha-nakṣatrādīnām animiṣeṇāvyakta-ranhasā bhagavatā kālena bhrāmyamāṇānām sthāṇur ivāvaṣṭambha īśvareṇa vihitaḥ śaśvad avabhāsate

अर्थ: वे, ध्रुव, उस स्थिर आधार के रूप में सदा देदीप्यमान रहते हैं, जिसके चारों ओर समस्त ज्योतियाँ — ग्रह, नक्षत्र और अन्य — उस अदृश्य, अनिमेष गति वाले काल के द्वारा, जो स्वयं भगवान् हैं, घुमाई जाती हैं; भगवान् ने ही ऐसा विधान किया है। (स्कन्ध 5, अध्याय 23, श्लोक 2)

यहाँ श्रीशुक धीरे से वह कारण हमारे समक्ष रखते हैं जिससे यह सम्पूर्ण गतिशील ज्योति-आकाश एक सूत्र में बँधा है — न तो संयोग से, न किसी स्वतः चलने वाले अंधे नियम से, अपितु भगवान् की उसी विधायक इच्छा से, जो उन्होंने ध्रुव की भक्ति के प्रति शुद्ध प्रेमवश उन्हें प्रदान की। क्योंकि एक छोटे, शोकाकुल बालक के रूप में भी ध्रुव का प्रेम अटल था, इसलिए भगवान् ने सृष्टि के सबसे विशाल चक्र — काल की उसी गति को, जो प्रत्येक तारे और ग्रह को चलाती है — ध्रुव के अचल आसन के चारों ओर घुमाने का विधान किया, और उन्हें अग्नि, धर्म तथा सृष्टि

के महान् अधिष्ठाताओं से भी ऊपर सम्मान दिया, जो अब उनकी परिक्रमा करते हैं। यह दर्शन उन सबका भी मौन उत्तर है जो घूमते आकाश को केवल किसी निर्जीव, अवैयक्तिक नियम का कार्य मानते हैं: तारों को गति देने वाला कोई निर्जीव नियम नहीं, अपितु परम भगवान् का व्यक्तिगत प्रेम और विधायक इच्छा है, जो अपने पूर्ण शरणागत भक्त को महिमामण्डित करने में आनन्दित होते हैं। (श्लोक 2-3)



भगवान् द्वारा आकाश के शिखर पर एक अटल खम्भे के समान स्थिर, महान् भक्त ध्रुव सदा देदीप्यमान रहते हैं, तारों के रूप में गतिशील अग्नि, इन्द्र, कश्यप और धर्म द्वारा श्रद्धापूर्वक परिक्रमित (श्लोक 1-2)।

तारों का घूमता हुआ चक्र

इस आश्चर्य को हमारे चित्त में बसाने के लिए, श्रीशुक हमें गाँव के खलिहान से लिया एक सरल दृष्टान्त देते हैं। जैसे बीच में एक खम्भे से बँधे बैल अनाज दाँते हैं, अपने-अपने कई घेरों में घूमते हुए — कुछ खम्भे के निकट, कुछ दूर — वैसे ही समस्त ज्योतियों के समूह, ग्रह और तारे, काल के महान् चक्र से बँधे हैं। ब्रह्माण्डीय वायु से प्रेरित और ध्रुवतारे को अपना केन्द्र बनाकर, वे कल्प के अन्त तक घूमते रहते हैं, प्रत्येक अपने नियत मार्ग पर। और कहीं हम यह न सोचें कि इतनी विशाल ज्योतियाँ रिक्त आकाश में बिना गिरे कैसे टिकी हैं, इसके लिए वे एक दूसरा कोमल दृष्टान्त देते हैं: जैसे बादल और बाज़ जैसे पक्षी आकाश में तैरते और विचरते हैं, वायु और अपने भाग्य से थामे हुए, वैसे ही ये देदीप्यमान समूह, जड़-चेतन के मिलन से जन्मे और अपने संचित कर्मों के अनुसार गतिशील, कभी भूमि पर नहीं गिरते।

यथा मेढीस्तम्भ आक्रमणपशवः संयोजितास्त्रिभिस्त्रिभिः सवनैर्यथास्थानं मण्डलानि चरन्त्येवं भगणा ग्रहादय एतस्मिन्नन्तर्बहिर्योगेन कालचक्र आयोजिता ध्रुवमेवावलम्ब्य वायुनोदीर्यमाणा आकल्पान्तं परिचङ्क्रमन्ति नभसि यथा मेघाः श्येनादयो वायुवशाः कर्मसारथयः परिवर्तन्ते एवं ज्योतिर्गणाः प्रकृतिपुरुषसंयोगानुगृहीताः कर्मनिर्मितगतयो भुवि न पतन्ति ॥ ३ ॥

yathā meḍhistambha ākramaṇa-paśavaḥ saṁyojitās tribhis tribhiḥ savanair yathā-sthānaṁ maṇḍalāni caranty evaṁ bhagaṇā grahādaya etasminn antar-bahir-yogena kāla-cakra āyojitā dhruvam evāvalambya vāyunodīryamāṇā ākalpāntaṁ paricaṇ kramanti nabhasi yathā meghāḥ

śyenādayo vāyu-vaśāḥ karma-sārathayaḥ parivartante evaṁ jyotirgaṇāḥ prakṛti-puruṣa-samyogānugṛhītāḥ karma-nirmita-gatayo bhuvi na patanti

अर्थ: जैसे बीच के खम्भे से बँधे बैल खलिहान को दाँते हुए अपने कई घेरों में घूमते हैं, कुछ भीतरी घेरे में और कुछ बाहरी में, वैसे ही ज्योतियों के समूह — ग्रह और तारे — काल के चक्र से बँधे और वायु से प्रेरित, ध्रुवतारे को केन्द्र बनाकर कल्प के अन्त तक घूमते हैं, प्रत्येक अपने मार्ग पर। और जैसे बादल और बाज़ जैसे पक्षी आकाश में विचरते हैं, वायु से थामे हुए, वैसे ही ये ज्योतियाँ, प्रकृति और पुरुष के संयोग से उत्पन्न और अपने पूर्व-कर्मों के फल से गतिशील, भूमि पर नहीं गिरतीं। (स्कन्ध 5, अध्याय 23, श्लोक 3)



बीच के खम्भे से बँधे बैलों के समान जो खलिहान को अपने घेरों में दाँते हैं, ग्रह और तारे अटल ध्रुवतारे के चारों ओर घूमते हैं, ब्रह्माण्डीय वायु से प्रेरित होकर कल्प के अन्त तक (श्लोक 3)।

शिशुमार: आकाश में भगवान् का रूप

अब श्रीशुक इस अध्याय का हृदय प्रकट करते हैं — देखने की एक ऐसी रीति जो समूचे रात्रि-आकाश को प्रेममयी आराधना का विषय बना देती है। ऐसे ऋषि हैं, वे हमें बताते हैं, जो गहन ध्यान के लिए इस समस्त ज्योति-समूह को स्वयं भगवान् वासुदेव के स्वरूप में देखते हैं, जो नभ में एक महान् डॉल्फिन — शिशुमार — के आकार में प्रकट है।

केचनैतज्ज्योतिरनीकं शिशुमारसंस्थानेन भगवतो वासुदेवस्य योगधारणायामनुवर्णयन्ति ॥ ४ ॥

kecanaitaj jyotir-anīkaṁ śīśumāra-saṁsthānena bhagavato vāsudevasya yoga-dhāraṇāyām anuvārṇayanti

अर्थ: कुछ ऋषि इस समस्त ज्योति-समूह को, स्थिर ध्यान के लिए, भगवान् वासुदेव का ही रूप बताते हैं, जो आकाश में डॉल्फिन के आकार में विद्यमान है। (स्कन्ध 5, अध्याय 23, श्लोक 4)

फिर कोमल सावधानी से श्रीशुक उस विशाल, कुण्डलित शरीर का अंग-अंग वर्णन करते हैं, ताकि ध्यान करता हृदय उसे पूर्णतया धारण कर सके। वह डॉल्फिन अपने सिर को नीचे झुकाए और अपने शरीर को घेरों में कुण्डलित किए हुए है। उसकी पूँछ के ठीक सिरे पर स्वयं ध्रुव देदीप्यमान हैं; पूँछ पर, एक के बाद एक, प्रजापति, अग्नि, इन्द्र और धर्म स्थापित हैं; पूँछ की जड़ पर, धाता और विधाता; और कमर पर, सप्तर्षिमण्डल के सात ऋषि। कुण्डलित शरीर के दाहिनी ओर उत्तरायण के नक्षत्र स्थित हैं, और बाई ओर दक्षिणायन के, दोनों पक्ष समान रूप से मिले हुए। उसकी पीठ पर अजवीथी नामक तारा-समूह विराजमान है, और उसके उदर पर आकाशगंगा की देदीप्यमान पट्टी बहती है।

अंग-अंग स्थापन चलता रहता है, जब तक उस महान् रूप का कोई भाग अपवित्र नहीं रह जाता। पुनर्वसु और पुष्य कटि-प्रदेश पर, आर्द्रा और आश्लेषा पिछले पैरों पर, अभिजित् और उत्तराषाढ़ा नासिका पर, श्रवण और पूर्वाषाढ़ा नेत्रों पर, धनिष्ठा और मूल कानों पर विश्राम करते हैं; मघा से आगे के नक्षत्र एक ओर की पसलियों पर और मृगशिरा से आगे के दूसरी ओर की पसलियों पर स्थित हैं, और शतभिषा तथा ज्येष्ठा कन्धों पर स्थापित हैं। और उस दिव्य डॉल्फिन के सिर, मुख और स्वयं अंगों पर महान् ज्योतियाँ सिंहासनासीन हैं।

उत्तराहनावगस्तिरधराहनौ यमो मुखेषु चाङ्गारकः शनैश्चर उपस्थे बृहस्पतिः ककुदि वक्षस्यादित्यो हृदये नारायणो मनसि चन्द्रो नाभ्यामुशना
स्तनयोरश्विनौ बुधः प्राणापानयो राहुर्गले केतवः सवङ्गिषु रोमसु सर्वे तारागणाः ॥ ७ ॥

*uttarā-hanāv agastir adharā-hanau yamo mukheṣu cāṅgārakaḥ śanaiścara upasthe bṛhaspatih
kakudī vakṣasy ādityo hṛdaye nārāyaṇo manasi candro nābhyām uśanā stanayor aśvinau
budhaḥ prāṇāpānayo rāhur gale ketavaḥ sarvāṅgeṣu romasu sarve tārā-gaṇāḥ*

अर्थ: इस रूप पर, ऋषि अगस्त्य ऊपरी जबड़े पर और यम निचले जबड़े पर स्थापित हैं; मंगल उसका मुख है, शनि उसकी जननेन्द्रिय, बृहस्पति उसका कूबड़, सूर्य उसका वक्ष; नारायण उसके हृदय में विराजते हैं, चन्द्रमा उसके मन में, और शुक्र उसकी नाभि पर; दोनों अश्विनीकुमार उसके स्तनों पर, बुध उसके प्राण और अपान श्वासों में, राहु उसके कण्ठ पर, केतु उसके समस्त शरीर पर, और शेष समस्त तारागण उसके रोमों में विराजमान हैं। (स्कन्ध 5, अध्याय 23, श्लोक 7)



समूचा तारागण शिशुमार के रूप में देखा गया, भगवान् वासुदेव का कुण्डलित डॉल्फिन-रूप — पूँछ के सिरे पर ध्रुव, कमर पर सप्तर्षि, और प्रत्येक अंग पर स्थापित देवता और ग्रह (श्लोक 4-7)।

काल के स्वामी को सन्ध्या-प्रार्थना

इस देदीप्यमान रूप को हमारे समक्ष खोलकर, श्रीशुक हमें बताते हैं कि ऐसे दर्शन के साथ क्या करना है — केवल उसकी प्रशंसा नहीं, अपितु आराधना। प्रत्येक सन्ध्या को, उस पावन गोधूलि में जब दिन रात्रि को सौंपता है, जो संयमी और मौन है उसे विष्णु भगवान् के इस सर्व-देवमय स्वरूप की ओर अपनी दृष्टि टिकाकर, भक्तिपूर्ण एकाग्र हृदय से यह प्रार्थना भीतर ही भीतर अर्पित करते हुए उपासना करनी चाहिए।

एतदु हैव भगवतो विष्णोः सर्वदेवतामयं रूपमहरहः सन्ध्यायां प्रयतो वाग्यतो निरीक्षमाण उपतिष्ठेत् नमो ज्योतिर्लोकाय
कालायनायानिमिषां पतये महापुरुषायाभिधीमहीति ॥ ८ ॥

*etad u haiva bhagavato viṣṇoḥ sarva-devatāmayam rūpam aharahaḥ sandhyāyām prayato
vāgyato nirīkṣamāṇa upatiṣṭheta namo jyotir-lokāya kālāyanāyānimiṣāṁ pataye mahā-
puruṣāyābhīdhīmahīti*

अर्थ: भगवान् विष्णु के इसी रूप पर, जो समस्त देवताओं से बना है, अपनी दृष्टि स्थिर करते हुए, संयमी और मौन रहकर, प्रत्येक सन्ध्या को इस प्रार्थना के साथ उसकी उपासना करनी चाहिए: “ज्योतिर्मय लोक को नमस्कार, उन्हें जो काल की गति स्वरूप हैं, समस्त देवताओं के स्वामी हैं — उन परम पुरुष का हम ध्यान करते हैं।” (स्कन्ध 5, अध्याय 23, श्लोक 8)

और श्रीशुक हमें यह विचारता हुआ नहीं छोड़ते कि ऐसी उपासना क्या फल देती है। यही रूप, जो ग्रहों, नक्षत्रों और समस्त तारों से रचा गया है, उनके पापों को धो देता है जो प्रतिदिन तीनों सन्धि-वेलाओं में इस प्रार्थना को श्रद्धा से दोहराते हैं। सचमुच, जो इस रूप को प्रणाम करता है, या दिन में तीन बार इसे मन में स्मरण भी करता है, उसका तत्काल किया गया पाप उसी क्षण विलीन हो जाता है।

ग्रहर्क्षतारामयमाधिदैविकं
पापापहं मन्त्रकृतां त्रिकालम् ।
नमस्यतः स्मरतो वा त्रिकालं
नश्येत् तत्कालजमाशु पापम् ॥ ९ ॥

*graharkṣatārāmayam ādhidaivikaṁ pāpāpahaṁ mantra-kṛtāṁ tri-kālam namasyataḥ smarato
vā tri-kālam naśyeta tat-kālajam āśu pāpam*

अर्थ: भगवान् का यह अधिष्ठाता रूप, जो ग्रहों, नक्षत्रों और तारों से बना है, उनके पापों को नष्ट कर देता है जो इस प्रार्थना को दिन के तीनों सन्धि-कालों में करते हैं; और जो इसे प्रणाम करता है या तीन बार इसका स्मरण भी करता है, उसका उसी घड़ी का पाप शीघ्र नष्ट हो जाता है। (स्कन्ध 5, अध्याय 23, श्लोक 9)



पावन गोधूलि में, एक भक्त संयमी और मौन खड़ा होकर, तारों-भरे शिशुमार रूप को ऊपर निहारता है और काल की गति स्वरूप भगवान् को सन्ध्या-प्रार्थना अर्पित करता है (श्लोक 8-9)।

इस अध्याय की प्रमुख शिक्षाएँ

समूचा आकाश भगवान् का ही रूप है। इस अध्याय का सबसे गहरा उपहार देखने की एक रीति है। रात्रि-आकाश दूर की बिखरी अग्नियाँ नहीं, अपितु एक ही जीवित आकृति है — शिशुमार, भगवान् वासुदेव का रूप, जिसके अंगों पर प्रत्येक तारा और ग्रह विराजमान है। इस प्रकार ऊपर देखना यह स्मरण करना है कि ऐसा कोई स्थान नहीं जहाँ भगवान् न हों, और ऐसा कुछ नहीं जो उनमें समाया न हो।

अटल भक्ति एक अविचल स्थान जीतती है। ध्रुव आकाश के शिखर पर देदीप्यमान हैं, भगवान् द्वारा एक खम्भे के समान स्थिर, वह स्थिर केन्द्र जिसके चारों ओर समस्त गतिशील लोक घूमते हैं। एक पूर्व स्कन्ध में कही गई उनकी भक्ति की अटलता उस बात की मूर्ति बन गई है जो भगवान् का अविचल प्रेम प्राप्त करता है — एक ऐसी शान्ति जिसे लोकों का प्रलय भी विचलित नहीं कर सकता।

समस्त गति भगवान् पर टिकी है। बीच के खम्भे से बँधे बैलों के समान, वायु से थामे बादलों और पक्षियों के समान, विशाल ज्योतियाँ गतिशील रहती हैं फिर भी नहीं गिरतीं, अपने मार्गों में काल की शक्ति से थामी हुई, जो स्वयं भगवान् हैं। कुछ भी अपने आप नहीं भटकता; सब कुछ उन्हीं के द्वारा थामा, संचालित और धारण किया जाता है।

आराधना सन्ध्या-आकाश के समान निकट हो सकती है। यहाँ हमें कोई विस्तृत विधान नहीं दिया गया, अपितु एक सरल, कोमल साधना: गोधूलि में शान्त होकर, ऊपर देखिए, और काल की गति स्वरूप भगवान् को एक छोटी प्रार्थना अर्पित कीजिए। भक्ति केवल एक थमी हुई जिह्वा, एक स्थिर दृष्टि और एक प्रेमपूर्ण हृदय माँगती है।

स्मरण हृदय को शुद्ध करता है। कहा गया है कि इस रूप की प्रार्थना उनके पाप धो देती है जो इसे दिन की सन्धियों में अर्पित करते हैं, और एक क्षण का प्रणाम या स्मरण भी उस घड़ी के दोष को विलीन कर देता है। भगवान् की ओर मुड़ना, चाहे कितना भी क्षणिक हो, कभी कृपा से रहित नहीं होता।

एक भाक्तेपूण चिन्तन

इस अध्याय में एक दुर्लभ मधुरता है, क्योंकि यह उसी वस्तु को — विशाल, मौन आकाश को, जो हमें लघु और खोया हुआ अनुभव करा सकता है — भगवान् के साथ एक अन्तरंग मिलन में बदल देता है। हम सब तारों के नीचे खड़े होकर अनुभव कर चुके हैं कि वे कितने विशाल और दूर हैं, और उनके सामने हमारा अपना जीवन कितना छोटा। श्रीशुक कोमलता से उस भाव को उलट देते हैं। वे दूर की ज्योतियाँ, वे हमें बताते हैं, अपरिचित नहीं हैं; वे भगवान् के अपने शरीर के अंग हैं, और उनके अटल केन्द्र पर वह भक्त देदीप्यमान है जो कभी एक छोटा, शोकग्रस्त बालक था और अब आकाश का अटल ध्रुव है। उसमें कितनी कोमलता है — कि प्रेम में अटलता को इतना ऊँचा सम्मान मिले कि समूचा आकाश उसके चारों ओर घूमने लगे। और कितनी कोमलता उस साधना में भी है जो यह अध्याय हमें देता है: कोई दीर्घ तपस्या नहीं, केवल सन्ध्या में रुककर, अपनी दृष्टि उठाकर, उस भगवान् का अभिनन्दन करना जो उन समस्त घूमते लोकों को थामे हैं। जब हम आकाश को इस प्रकार देखने लगते हैं, तब रात्रि स्वयं एक मन्दिर बन जाती है। घूमते तारे एक मौन आराधना बन जाते हैं जिसमें हम सम्मिलित होने के लिए आमन्त्रित हैं, और हमारी छोटी-से-छोटी सन्ध्या-प्रार्थना भी समूची सृष्टि की गति में अपना स्थान पा लेती है, जो सब प्रेम में, भगवान् के चारों ओर घूम रही है।

एक दैनिक भक्ति-साधना

आज रात, जब आकाश अँधेरा हो और पहले तारे प्रकट हों, एक क्षण के लिए बाहर निकलिए और इस अध्याय की दी हुई साधना का अनुसरण कीजिए। शान्त होइए, अपनी जिह्वा को थामिए, और सन्ध्या-आकाश की ओर अपनी दृष्टि उठाइए, यह स्मरण करते हुए कि वे समस्त ज्योतियाँ भगवान् के अपने रूप में समाई हैं। फिर, एकाग्र और प्रेमपूर्ण हृदय से, यह प्रार्थना अर्पित कीजिए जैसे प्राचीन ऋषियों ने की है: “ज्योतिर्मय लोक को नमस्कार, उन्हें जो काल की गति स्वरूप हैं, समस्त देवताओं के स्वामी हैं — उन परम पुरुष का हम ध्यान करते हैं।” और वह नाम जोड़िए जो सबसे प्रिय है: “ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।” गोधूलि में श्रद्धापूर्वक किया गया, एक मिनट के लिए भी, यह छोटा कर्म हृदय को ऊपर की ओर खींचता है, उसकी संकुचित चिन्ताओं से बाहर, उस विशाल, मौन आराधना में जो समूचा आकाश पहले से ही अर्पित कर रहा है।

उपसंहार

पंचम स्कन्ध का तेईसवाँ अध्याय हमारी दृष्टि को सर्वोच्च आकाश की ओर उठाता है और हमें उसे भक्ति की आँखों से देखना सिखाता है। सप्तर्षियों से कहीं ऊपर, अटल ध्रुव आकाश के केन्द्र में भगवान् द्वारा स्थापित एक दृढ़ स्तम्भ-सम प्रकाशपुंज बनकर देदीप्यमान हैं, देवताओं द्वारा सम्मानित और समस्त ज्योतियों को उनके मार्गों में थामे हुए। उनके चारों ओर ग्रह और तारे खलिहान के गिर्द बैलों के समान घूमते हैं, वायु में बादलों और पक्षियों के समान थामे हुए, कभी न गिरते, सदा काल की शक्ति से घूमते हुए। और विवेकी जन, ध्यान में ऊपर निहारते हुए, उस समूचे तारागण को एक ही जीवित रूप के रूप में देखते हैं — शिशुमार, भगवान् वासुदेव का डॉल्फिन-आकार, जिसकी पूँछ पर ध्रुव, कमर पर सप्तर्षि, और प्रत्येक अंग पर सिंहासनासीन देवता और ग्रह। इस रूप को हमें प्रत्येक सन्ध्या को काल की गति स्वरूप भगवान् की एक सरल, पावन प्रार्थना से प्रणाम करना सिखाया गया है। यह एक ऐसा अध्याय है जो रात्रि-आकाश का आश्चर्य हमें लौटा देता है, आराधना में बदला हुआ, और हमें स्मरण कराता है कि भगवान् केवल हृदय में ही नहीं, अपितु समूचे आकाश में महिमा से सुशोभित हैं।

श्रीमद्भागवतम् की दिव्य विद्या हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति को जागृत करे।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।

संदर्भ एवं आभार

- मूल संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण, पंचम स्कन्ध, तेईसवाँ अध्याय।
- शृंखला: श्रीमद्भागवतम् विज्ञम · विश्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट।
- पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र के आध्यात्मिक मार्गदर्शन एवं अनुशंसा के अनुसार प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, श्रद्धापूर्ण पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी एवं लिप्यन्तरण में दिए गए हैं और उनके अर्थ सारांश-रूप में। यह किसी एक प्रकाशक के सतत अनुवाद अथवा टीका का पुनरुत्पादन नहीं है। किसी प्रकाशक के संरक्षण अथवा समर्थन का कोई भाव अभिप्रेत नहीं है।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-canto-5-chapter-23-sisumara-form-in-the-heavens-hi.html

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम · कल्कि अवतार इंटरनेशनल · बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट

